## 1938D Satprarupana by Pushpdant or Pujyapad

*Bhagvan Pushpdant and Pujyapad Swami* (In Jain Siddhant Bhaskar, 1938), and its manuscript.

Written April 1936/Published March 1938.
Jain Siddhant Bhaskar, March 1938, p. 216-224.

# भगवान् पुष्पदन्त और पूज्यपाद स्वामी

[ लेखक—श्रीयुत पं० होरालाल शास्त्री ]

वर्त्तमान में उपलब्ध होनेवाले श्रुतज्ञान के सर्वप्रथम लिपिबद्धकर्ता या उद्धारक भगवान् पुष्पदन्त और भगवान् भूतबलि हुए हैं। इनका समय भगवान् महावीर के निर्वाण के लगभग ६०० वर्ष बाद का है। भ० पुष्पदन्त ने सर्वप्रथम जिस रचना को लिपिबद्ध किया, वह सूत्रात्मक 'जीवट्ठाण' है। इसके ऊपर आचार्य वीरसेन ने 'धवला' नाम की टीका साठ हजार श्लोकों प्रमाण बनायी। आज इस सिद्धान्तशास्त्र की 'धवल' इस नाम से प्रसिद्धि है। लोकप्रसिद्धवश मैं इस लेख में 'जीवट्ठाण-सिद्धान्त' को 'धवल-सिद्धान्त' नाम से उल्लेख करूंगा।

भ० उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र पर सर्वप्रथम टीकाकार पूज्यपाद स्वामी माने जाते हैं, हालां कि इसके पूर्व में स्वामी समन्तभद्र तत्त्वार्थ सूत्रपर 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' के रचयिता प्रसिद्ध हैं। किन्तु आज के उपलब्ध जैन वाङ्मय में उसके अवतरण या उल्लेख न पाये जाने से ऐतिहासिकों को उस के अस्तित्व में सन्देह है। कुछ भी हो इस वक्त उस के बारेमें मुझे कुछ नहीं कहना है, उसका निर्णय तो भविष्य में उपलब्ध होनेवाला जैन साहित्य ही करेगा। किन्तु यह तो निश्चित ही है कि तत्त्वार्थसूत्र पर जितनी भी दि० या श्वे० टीकायें उपलब्ध हैं, उन सब में 'सर्वार्थसिद्धि' ही सबसे प्राचीन मौलिक एवं प्रामाणिक मानी जाती है। पूज्यपाद का समय विक्रम की पांचवीं-छठीं शताब्दी माना जाता है और इस प्रकार से भगवान् पुष्पदन्त के लगभग पांच सौ वर्ष बाद उनका समय ठहरता है।

सर्वार्थसिद्धि की—प्रथम अध्याय के आठवें सूत्र ( सत्संख्या० ) की टीका अपना खास महत्त्व रखती है। उसमें पायी जानेवाली विशेषता न राजवार्तिक में उपलब्ध होती है और न श्लोक वार्तिक या तत्त्वार्थसूत्र की अन्य दि० श्वे० टीकाओं में ही। इस सूत्र की टीका का गम्भीर एवं गवेषणात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि पूज्यपाद स्वामी के समय एक भगवान् पुष्पदन्त के 'जीवट्ठाण' सिद्धान्त का पठन-पाठन बहुलता के साथ प्रचलित था, क्योंकि इस ( सत्संख्या० ) सूत्र की समग्र टीका में धवल-सिद्धान्त के मूलसूत्रों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है।

मैं यहाँ पर केवल सत्प्ररूपणा के कुछ उद्धरण देकर उक्त बात को पुष्ट करूंगा—

| धवल सिद्धान्त— सत्प्ररूपणा | | सर्वार्थसिद्धि प्र० अ० सू० ८ |
|---|---|---|
| १—अत्थि मिच्छाइट्ठी | सूत्र ७ | मिथ्यादृष्टिः |
| २—सासणसम्माइट्ठी | ,, ८ | सासादनसम्यग्दृष्टिः |
| ३—सम्मामिच्छाइट्ठी | ,, ९ | सम्यग्मिथ्यादृष्टिः |
| ४—असंजदसम्माइट्ठी | ,, १० | असंयतसम्यग्दृष्टिः |
| ५—संजदासंजदा | ,, ११ | संयतासंयतः |
| ६—पमत्तसंजदा | ,, १२ | प्रमत्तसंयतः |
| ७—अपमत्तसंजदा | ,, १३ | अप्रमत्तसंयतः |
| ८—अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा | ,, १४ | अपूर्वकरणस्थाने उपशमकः क्षपकः |
| ९—अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ठसुद्धि-संजदेसु अत्थि उवसमा खवा | ,, १५ | अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने उपशमकः क्षपकः |
| १०—सुहुमसांपराइयपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा | ,, १६ | सूक्ष्मसाम्परायस्थाने उपशमकः क्षपकः |
| ११—उवसंतकसायवीयरायछदुमत्था | ,, १७ | उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थः |
| १२—खीणकसायवीयरायछदुमत्था | ,, १८ | क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थः |
| १३—सजोगकेवली | ,, १९ | सयोगकेवली |
| १४—अजोगकेवली | ,, २० | अयोगकेवली चेति |
| १५—संतपरूवणाए दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य | ,, ६ | सत्प्ररूपणा द्विधा सामान्येन विशेषेण च |
| १६—आदेसेण गदियाणुवादेण अत्थि णिरयगदी तिरिक्खगदी मणुस्सगदी देवगदी सिद्धगदी चेदि | ,, २२ | विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ सप्तासु पृथ्वीषु आद्यानि चत्वारि गुणस्थानानि सन्ति |
| णिरयाए चउट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति | ,, २३ | |

| | |
|---|---|
| १७—तिरिक्खा पंचसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजद त्ति सूत्र २४ | तिर्यग्गतौ तान्येव संयतासंयतस्थानाधिकानि सन्ति |
| १८—मणुस्सा चोद्दसगुणट्ठाणेसु अत्थि मिच्छा०..... जाव अजोगकेवलि त्ति ,, २५ | मनुष्यगतौ चतुर्दशापि सन्ति |
| १९—देवा चदुसु ट्ठाणेसु अत्थि मिच्छा० सास० सम्मामि० असं० ,, २६ | देवगतौ नारकवत् |
| २०—एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चउरिं० एक्कम्मि चेव मिच्छाइट्ठिट्ठाणे ,, ३४ | इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियादिषु चतुरिन्द्रिय पर्यन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् |
| २१—पंचिंदिया० अजोगकेवलि त्ति ,, ३५ | पंचेन्द्रियेषु चतुर्दशापि सन्ति |
| २२—कायाणुवादेण०..... ,, ४० पुढविकाइया आउका० तेउका० वाउका० वणप्फइका० एक्कम्मि चेव मिच्छाइट्ठिट्ठाणे ,, ४१ | कायानुवादेन पृथिवीकायिकादिषु वनस्पति कायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् |
| २३—तसकाइया बीइंदियप्पहुदि जाव अजोगिकेवलि त्ति ,, ४३ | त्रसकायेषु चतुर्दशापि सन्ति |
| २४—जोगाणुवादेण०..... ,, ४५ मणजोगो वचिजोगो कायजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगकेवलि त्ति ,, ६२ | योगानुवादेन त्रिषु योगेषु त्रयोदश गुण स्थानानि भवन्ति |
| २५ - वेदाणुवादेण०..... ,, ९८ इत्थिवेदा पुरिसवेदा असण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ,, ९९ णवुंसयवेदा एइंदियप्पहुडि जाव जाव अणियट्टि त्ति ,, १०० | वेदानुवादेन त्रिषु वेदेषु मिथ्यादृष्ट्या निवृत्तिबादरान्तानि सन्ति। |
| २६—तेण परमवगदवेदा चेदि ,, १०१ | अपगत वेदेषु अनिवृत्ति बादराद्ययो केवल्यन्तानि। |

| | | |
|---|---|---|
| २७—कसायाणु-वादेण० | सूत्र | १०८ | कषायानुवादेन क्रोधमानमायासु मिथ्या- |
| कोधकसाई माणकसाई माया कसाई एइंदियप्पहुडि जाव अणि- यट्टि त्ति | ,, | १०९ | दृष्ट्यादीनि अनिवृत्तिबादरस्थाना न्तानि सन्ति |
| २८—लोभकसाई एइंदियप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइय सुद्धि संजद त्ति | ,, | ११० | लोभकषाये तान्येव सूक्ष्म साम्परायस्थाना- धिकानि |
| २९—अकसाई चउट्ठाणेसु अत्थि उव- संतकसायवीयरायछदुमत्था खीणकसाय वीय० सजोगकेवली अजोगकेवलि त्ति | ,, | १११ | अकषायः उपशान्तकषायः क्षीणकषायः सयोगकेवली अयोगकेवली चेति |
| ३०—णाणाणुवादेण अत्थि० | ,, | ११२ | ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभंगज्ञानेषु |
| मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी एइंदियप्पहुडि जाव सासण सम्माइट्ठि त्ति | ,, | ११३ | मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिश्चास्ति |
| विभंगणाणी सण्णिमिच्छाइट्ठीणं वा सासणसम्माइट्ठीणं वा | ,, | ११४ | |
| ३१—सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे तिण्णि वि- णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि आभिणिबोहियणाणं मादिअण्णा- णेण मिस्सियं सुदणाणं सुदअ- ण्णाणेण मिस्सियं ओहिणाणं विभंगणाणेण मिस्सयं तिण्णि वि- णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि वा | ,, | ११६ | |
| ३२—आभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं असंजदसम्माइट्ठिप्प- हुडि जाव खीणकसाय वीदराग- छदुमत्थ त्ति | ,, | ११७ | आभिनिबोधकश्रुतावधिज्ञानेषु असंयत- सम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति |
| ३३—मणपज्जवणाणी पमत्तसंज- दप्पहुडि जाव खीणकसायवीद- राग-छदुमत्थ त्ति | ,, | ११८ | मनःपर्ययज्ञाने प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषा- यान्ताः सन्ति |

| | | |
|---|---|---|
| ३४—केवलणाणी तिसु ठाणेसु सजोगकेवली अजोगकेवली सिद्धा चेदि | ,, ११९ | केवलज्ञाने सयोगोऽयोगश्च |
| ३५—संजमाणुवादेण० | ,, १२० | संयमानुवादेन संयताः प्रमत्तादयोऽयोगकेवल्यन्ताः। |
| संजदा पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगकेवलि त्ति | ,, १२१ | |
| ३६—सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति | ,, १२२ | सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयताः प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिस्थानान्ताः। |
| ३७—परिहारसुद्धिसंजदा दोसु ठाणेसु पमत्तसंजदट्ठाणे अपमत्तसंजदट्ठाणे | ,, १२३ | परिहारविशुद्धिसंयताः प्रमत्ताप्रमत्ताश्च |
| ३८—सुहुमसंपरायसुद्धिसंजदा एकम्मि चेव सुहुमसंपराइयसुद्धिसंजदट्ठाणे | ,, १२४ | सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयता एकस्मिन्नेव सूक्ष्मसाम्परायस्थाने |
| ३९—जहक्खादविहारसुद्धिसंजदा चदुसु ट्ठाणेसु उवसंतकसायवीयरायछदुमत्था खीणकसायवी० सजोगकेवली अजोगकेवलि त्ति | ,, १२५ | यथाख्यातविहारशुद्धिसंयताः—उपशान्तकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ताः |
| ४०—संजदासंजदा एकम्मि चेव संजदा-संजदट्ठाणे | ,, १२६ | संयतासंयता एकस्मिन्नेव संयतासंयतस्थाने |
| ४१—असंजदा एइंदियप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति | ,, १२७ | असंयता आदौ तु चतुर्षु गुणस्थानेषु |
| ४२—दंसणाणुवादेण० | ,, १२८ | दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनयोः मिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति |
| चक्खुदंसणी चउरिंदियप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति | ,, १२९ | |
| अचक्खुदंसणी एइंदियप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति | ,, १३० | |
| ४३—ओहिदंसणी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था त्ति | ,, १३१ | अवधिदर्शने असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि |

| | | |
|---|---|---|
| ५४—केवलदंसणी तिसु ट्ठाणेसु सजोग-केवली अजोगकेवली सिद्धा चेदि | ,, | १३२ |
| ५५—लेस्सावादेण० किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउ-लेस्सिया एइंदियप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति | ,, | १३३ |
| ५६—तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसंजद त्ति | ,, | १३४ |
| ५७—सुक्कलेस्सिया सण्णिमिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव सजोगकेवलि त्ति | ,, | १३५ |
| ५८—तेण परमलेस्सिया | ,, | १३६ |
| ५९—भवियाणुवादेण० भवसिद्धिया एइंदियप्पहुडि जाव अजोगकेवलि त्ति | ,, | १३७ |
| ६०—अभवसिद्धिया एक्कम्मि चेय मि-च्छाइट्ठिट्ठाणे | ,, | १३८ |
| ६१—सम्मत्ताणुवादेण० सम्माइट्ठीखइयसम्माइट्ठीअसं-जदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोग-केवलि त्ति | ,, | १३९ |
| ६२—वेदगसम्माइट्ठी असंजदसम्मा इट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्त-संजद त्ति | ,, | १४० |
| ६३—उवसमसम्माइट्ठीअसंजदसम्मा-इट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति | ,, | १४१ |
| ६४—सम्मामिच्छाइट्ठी एक्कम्मि चेव सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे | ,, | १४२ |

केवलदर्शने सयोगकेवली अयोगकेवली च

लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकपोतलेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि असंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानि सन्ति

तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यादीनि अप्रमत्तस्थानान्तानि ।

शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि

अलेश्या अयोग-केवलिनः ।

भव्यानुवादेन भव्येषु चतुर्दशापि सन्ति

अभव्या आद्य एव स्थाने

सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अयोगकेवल्यन्तानि सन्ति

क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अप्रमत्तान्तानि

औपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशांतकषायान्तानि

| | | | |
|---|---|---|---|
| सासणसम्माइट्ठी एक्कम्मि चेव-<br>सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे | ,, | १४६ | सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्यङ्मिथ्यादृष्टि<br>मिथ्यादृष्टिश्च स्व स्व स्थाने |
| मिच्छाइट्ठी एइंदियप्पहुडि जाव<br>सण्णिमिच्छाइट्ठि त्ति | ,, | १४७ | |
| ५५—सण्णियाणुवादेण० | ,, | १७० | संज्ञानुवादेन संज्ञिषु द्वादशगुणस्थानानि<br>क्षीणकषायन्तानि |
| सण्णीमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव<br>खीणकसायवीयरागछदुमत्थ त्ति | ,, | १७१ | |
| ५६—असण्णीएइंदियप्पहुडि जाव<br>असण्णिपंचिंदिय त्ति | ,, | १७२ | असंज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् |
| ५७—आहाराणुवादेण० | ,, | १७३ | आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्या<br>दीनि सयोगकेवल्यन्तानि |
| आहारा एइंदियप्पहुडि जाव<br>सयोगकेवलि त्ति | ,, | १७४ | |
| ५८—अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु<br>विग्गहगइसमावण्णाणं केवलीणं<br>वा समुग्घादगदाणं अजोग-<br>केवली सिद्धा चेदि | ,, | १७५ | अनाहारकेषु विग्रहगत्यापन्नेषु त्रीणि गुण<br>स्थानानि-मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्य-<br>असंयतसम्यदृष्टिश्च । समुद्घातगत<br>सयोगकेवली अयोगकेवली च |

उपर्युक्त उद्धरणों को देखते हुए यह कहने को मन चाहता है कि मानों भगवान् पुष्पदन्त के सिद्धान्त-सूत्रों का पूज्यपाद स्वामी ने संस्कृतानुवाद कर दिया हो। किन्तु ऐसा मान लेने पर भी पूज्यपाद स्वामी के असमान पाण्डित्य में कोई बट्टा नहीं आता, क्योंकि पूज्यपाद स्वामी के समय में संस्कृत भाषा का ही सर्वत्र प्राचुर्य था। उसमें ही सर्व मतमतान्तरों के विद्वान अपने अपने धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक ग्रन्थों की रचना कर रहे थे और उस समय ब्राह्मणों का संस्कृत-भाषा-पाण्डित्य सर्वत्र विचर रहा था, इसलिए जैनाचार्यों को भी यह उचित प्रतीत हुआ कि जैन वाङ्मय सम्बन्धी साहित्य की रचना भी संस्कृत भाषा में ही की जाय जिससे हमारा साहित्य जैनेतर साहित्य के मुकाबिले में किसी प्रकार हीन न समझा जाय। इसके पूर्व तक सारा जैन साहित्य प्राकृत भाषामय था पर पांडित्याभिमानी-ब्राह्मणों ने अपने नाटकादि ग्रंथों में संस्कृत के मुकाबिले में प्राकृत भाषा का नीचा स्थान दिया अर्थात नीच पात्रों की भाषा प्राकृत रखी और सर्वसाधारण की दृष्टि में प्राकृत हल्की भाषा समझी जाने लगी तब जैनाचार्यों को भी संस्कृत भाषा अपनानी पड़ी।

पाठकगण यहां यह शंका उपस्थित कर सकते हैं, कि यह कैसे मान लिया जाय कि पूज्यपाद के सामने सिद्धांत-सूत्र रहे हैं और उन्होंने उनका संस्कृतानुवाद सर्वार्थसिद्धि में

दिया है। परन्तु इसका उत्तर हमें इसी       के नं० ३१ से मिल जाता है जिसमें मिश्रगुणस्थान के मिश्रज्ञानों का वर्णन सिद्धान्तसूत्र में तो किया गया है पर सर्वार्थसिद्धि में उक्त बात बिलकुल ही नहीं दी गई है। कोई यह कह सकते हैं कि संभव है, पाठ छूट गया हो पर यथार्थ में पाठ नहीं छूटा है। किंतु जान बूझ कर यह विषय छोड़ा गया सा प्रतीत होता है। कारण कि पूज्यपाद स्वामी के हृदय में यह तर्क उठा कि सम्यक्तता या मिथ्यापना हो 'दर्शन' के साथ सम्बन्ध रखने वाली वस्तुयें हैं, यहां ज्ञान में उनका क्या सम्बन्ध? फिर भी उनके हृदय में यह प्रश्न खड़ा ही रहा कि मिश्रगुणस्थानवर्ती ज्ञानों को 'ज्ञान' कहा जाय या 'अज्ञान'? यदि ज्ञान मानें—तो उनकी गिनती सम्यग्ज्ञानरूप मति श्रुत ज्ञान की गुणस्थान-संख्या के साथ होना चाहिए और यदि 'अज्ञान' मानें तो उनकी गिनती कुमति कुश्रुत ज्ञान के गुणस्थानों के साथ की जानी चाहिए? पर वे तो उन्हें एकदम ही छोड़ गए हैं जो कि एक विचारणीय बात है। परन्तु धवलसिद्धांत के मूल सूत्रकार तो उसे बहुत ही स्पष्ट सूत्र-द्वारा ( सूत्र नं० ११६ ) उस बात को प्रकट करते हैं कि इस मिश्रगुणस्थान में जब मिश्रभाव है, मिश्र सम्यक्त्व है, तो फिर उनके ही अनुसार मिश्रज्ञान भी क्यों न मान लिया जाय। इसीलिये उन्होंने उसे तदनुसार ही सूत्र में निबद्ध किया है।

श्रुतसागर सूरि ने भी श्रुतसागरी टीका में इसी स्थान पर निम्न प्रकार से शंका उठाकर इसका समाधान करना चाहा है, पर वे भी इसका उचित समाधान नहीं कर सके हैं। क्योंकि जो समाधान किया है उसकी पुष्टि किसी सिद्धांतग्रंथ से नहीं होती, बल्कि विरोध ही आता है। वह अंश इस प्रकार है:—

"सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्ज्ञानमज्ञानं च केवलं न संभवति, तस्याज्ञानत्रयाधारत्वात्। उक्तं च—'मिस्सेणाणत्तयं मिस्सं अण्णाणत्तयणेति।' तेन ज्ञानानुवादे मिश्रस्यानभिधानं, तस्याज्ञान-प्ररूपणायामेवाभिधानं ज्ञातव्यम्। ज्ञानस्य (?) यथावस्थितार्थविषयत्वाभावात्।"

यह बात तो बिलकुल स्पष्ट ही है कि श्रुतसागरी टीका बिलकुल ही सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः अनुकरण करती हुई लिखी गई है, जिसका अर्थ यह होता है कि श्रुतसागरसूरि के हृदय में भी यह शंका उठी कि पूज्यपाद स्वामी ने इस मिश्रगुणस्थान में ज्ञान या अज्ञान का निरूपण क्यों नहीं किया? उसका समाधान उन्होंने उक्त रूप में करना चाहा है, पर यह एक आश्चर्य की ही बात है कि स्वयं ही सिद्धांतसूत्र का उद्धरण देते हुए उन्होंने मिश्रगुणस्थान में मिश्रज्ञान कहने का साहस नहीं किया। क्योंकि उनके ध्यान में संभवतः यह बात सामने रही मालूम पड़ती है कि यदि हम इस गुणस्थान में मिश्रज्ञान मानेंगे तो लोग इसे पूज्यपाद

की त्रुटि समझेंगे या फिर हमारे ही कथन को अप्रमाण समझेंगे। इसलिए उन्होंने उस बात की ओर संकेत भी किया, सिद्धांतसूत्र का उद्धरण भी दिया और एक हलका सा समाधान भी कर दिया। जो कुछ भी हो पर इतना तो इस बात से पता चलता ही है कि श्रीपूज्यपाद स्वामी के सामने सर्वार्थसिद्धि रचते समय धवलसिद्धांत के मूलसूत्र अवश्य थे। इस बात का और भी प्रबल समर्थन आगे की संख्या, क्षेत्र आदि प्ररूपणाओं के देखने से बखूबी हो जाता है जिसका यह अर्थ होता है कि आज से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व इस सिद्धांतग्रंथ का पठन-पाठन बहुत जोरों से होता रहा है और होना ही चाहिये था—क्योंकि यही अमूल्यनिधि तो हमारे महर्षियों ने विरासत में सौंपी है।

अनेकान्त २ बार में प्रकाश

प्रकाशित अनेकान्त में छप चुका

श्री

ता० ६।८।३६

भगवान् पुष्पदन्त और पूज्यपाद स्वामी

—०—

वर्तमान में उपलब्ध होने वाले श्रुत ज्ञान के सर्व प्रथम-लिपि-बद्ध-कर्ता या उद्धारक भगवान् पुष्पदन्त और भ० भूतबलि-भट्टारक हुए हैं। इनका समय भगवान् महावीर के निर्वाण के लगभग ६०० वर्ष बाद का है। भगवान् पुष्पदंत ने सर्व प्रथम जिस रचना को लिपि-बद्ध किया, वह सूत्रात्मक 'जीवट्ठाण' है। इसी के ऊपर आचार्य वीरसेन ने ६० हजार श्लोक प्रमाण 'धवला' नाम की टीका बनायी, जो कि आज 'धवल सिद्धान्त' नाम से प्रसिद्ध है। लोक प्रसिद्धि वश मैं इस लेख में 'जीवट्ठाण सिद्धान्त' को 'धवल-सिद्धान्त नाम से ही उल्लेख करूंगा।

भ० उमास्वाति के तत्वार्थसूत्र पर सर्व प्रथम टीकाकार पूज्यपाद स्वामी माने जाते हैं। हालांकि— इसके पूर्व में स्वामी समन्तभद्र, तत्वार्थसूत्र पर 'गन्ध हस्ति महाभाष्य' के रचयिता प्रसिद्ध हैं। किन्तु आज के उपलब्ध जैन वाङ्मय में उसके अवतरण या उल्लेख न पाये जाने से ऐतिहासिकों को सन्देह है। कुछ भी हो, इस समय उसके बाबत मुझे कुछ नहीं कहना है। इसका निर्णय तो भविष्य में उपलब्ध होने वाला जैन साहित्य ही करेगा। किन्तु यह तो निश्चित ही है कि तत्वार्थ-सूत्र पर जितनी भी दि० या श्वे० टीकायें उपलब्ध हैं, उन-सब में 'सर्वार्थ सिद्धि' ही सर्व-प्राचीन, मौलिक एवं प्रामा-णिक मानी जाती है। पूज्य पाद का समय विक्रम की पांचवी-छठी शताब्दि माना जाता है और इस प्रकार से भगवान् पुष्पदन्त के लगभग पांचसौ वर्ष बाद उनका समय ठहरता है।

सर्वार्थ सिद्धि की— प्रथम अध्याय के आठवें सूत्र (सत्संख्याक्षेत्र०) की टीका अपना खास महत्व रखती है। उसमें पायी जाने वाली विशेषता न राजवार्तिक में दृष्टिगोचर होती है और न श्लोकवार्तिक या तत्वार्थसूत्र की अन्य दि० श्वे० टीकाओं में ही। इस सूत्र की टीका का गम्भीर एवं गवेषणात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि पूज्यपाद

स्वामी के समय तक भगवान् पुष्पदन्त के 'जीवट्ठाण' सिद्धान्त का पठन-पाठन बहुलता के साथ सर्वत्र प्रचलित था, क्योंकि इस (सर्वार्थसिद्धि) ग्रन्थ की समग्र टीका में धवल सिद्धान्त के सूत्र-सूत्रों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दृष्टि गोचर होता है। मैं यहां पर तुलनात्मक दृष्टि से केवल सत्प्ररूपणा के कुछ उद्धरण देकर उक्त कथन को पुष्ट करूंगा।

| | धवल सिद्धान्त सत्प्ररूपणा | सूत्रांक | सर्वार्थसिद्धि प्रथम अध्याय सूत्र ८ की टीका |
|---|---|---|---|
| १ | अत्थि मिच्छाइट्ठी | ७ | मिथ्यादृष्टिः |
| २ | सासण सम्माइट्ठी | ८ | सासादन सम्यग्दृष्टिः |
| ३ | सम्मामिच्छाइट्ठी | ९ | सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः |
| ४ | असंजद सम्माइट्ठी | १० | असंयत सम्यग्दृष्टिः |
| ५ | संजदा संजदा | ११ | संयता संयतः। |
| ६ | पमत्तसंजदा | १२ | प्रमत्तसंयतः |
| ७ | अप्पमत्त संजदा | १३ | अप्रमत्तसंयतः |
| ८ | अपुव्वकरण पविट्ठ सुद्धि संजदेसु अत्थि उवसमा खवा | १४ | अपूर्वकरण ~~गुण~~ स्थाने उपशमकः क्षपकः |
| ९ | अणियट्टिबादर सांपराइय पविट्ठ सुद्धि-संजदेसु अत्थि उवसमा खवा | १५ | अनिवृत्ति बादर साम्पराय स्थाने उपशमकः क्षपकः |
| १० | सुहुम सांपराइय पविट्ठ सुद्धि संजदेसु अत्थि उवसमा खवा | १६ | सूक्ष्म साम्पराय स्थाने उपशमकः क्षपकः |
| ११ | उवसंत कसायवीयराय छदुमत्था | १७ | उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थः |
| १२ | खीणकसाय वीयराय छदुमत्था | १८ | क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थः |
| १३ | सजोग केवली | १९ | सयोग केवली |
| १४ | अजोग केवली | २० | अयोग केवली चेति। |

धवल सिद्धान्त में २१ वें नम्बर का सूत्र 'सिद्धा चेदि' है, जिसका कि 'जीवट्ठाण (जीवस्थान) के लिहाज से होना आवश्यक है। किन्तु पूज्य पाद स्वामी ने गुणस्थान की दृष्टि से उसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी और अयोग केवली के नाम के आगे ही 'इति' शब्द देकर के उस बात की समाप्ति कर दी है।

| | |
|---|---|
| १५ १६ संतपरूवणाए दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ६ | सत्प्ररूपणा द्विविधा ~~ओघेन~~ सामान्येन विशेषेण च। |
| १६ आदेसेण गदियाणुवादेण० २२ णेरइया चउठ्ठाणेसु अत्थि-मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि त्ति २३ | विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु आद्यानि चत्वारि गुणस्थानानि सन्ति |
| १७ तिरिक्खा पंचसु ठ्ठाणेसु अत्थि-मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्मा० संजदासंजदात्ति २४ | तिर्यग्गतौ तान्येव संयतासंयतस्थानाधिकानि सन्ति |
| १८ मणुस्सा चोद्दस गुणट्ठाणेसु अत्थि-मिच्छा० ...... अजोगकेवलित्ति २५ | मनुष्यगतौ चतुर्दशापि सन्ति |
| १९ देवा चदुसु ठ्ठाणेसु अत्थि मिच्छा० सासण० सम्मामि० असं०सम्मा० २६ | देवगतौ नारकवत् |
| २० एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदि० एक्कम्मि चेय मिच्छाइट्ठिठ्ठाणे ३४ | इन्द्रियानुवादेन-एकेन्द्रियादिषु चतुरिन्द्रियपर्यन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् |
| २१ पंचिंदिया० ...... अजोगकेवलित्ति ३५ | पंचेन्द्रियेषु चतुर्दशापि सन्ति |
| २२ कायाणुवादेण० ४० पुढविकाइया आउका० तेउका० वाउका० वणप्फइका० एक्कम्मि चेय मिच्छाइट्ठिठ्ठाणे ४१ | कायानुवादेन पृथिवीकायिकादिषु ~~[illegible]~~ वनस्पतिकायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। |
| २३ तस काइया बीइंदियप्पहुदि जाव अजोगकेवलित्ति ४२ | त्रसकायेषु चतुर्दशापि सन्ति |
| २४ जोगाणुवादेण० ४५ मणजोगो वचिजोगो कायजोगो सण्णि-मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगकेवलित्ति ६२ | योगानुवादेन त्रिषु योगेषु त्रयोदश गुणस्थानानि भवन्ति। |
| २५ वेदाणुवादेण० ९८ इत्थिवेदा पुरिसवेदा असण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टित्ति ९९ णवुंसयवेद एइंदियप्पहुडि जाव अणियट्टित्ति १०० | वेदानुवादेन त्रिषु वेदेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानि सन्ति। |
| २६ तेण परमवगदवेदा चेदि १०१ | अपगतवेदेषु अनिवृत्तिबादराद्ययोगकेवल्यन्तानि। |

तारीख २ अक्टो प्रारंभ
८।८।३७



| | | | |
|---|---|---|---|
| २७ | कसायाणुवादेण० | १०८ | कषायानुवादेन क्रोध मान मायासु- |
| | कोधकसाई माणकसाई मायाकसाई | | मिथ्यादृष्ट्यादीनि अनिवृत्ति बादर- |
| | एइंदियप्पहुडि जाव अणियट्टित्ति | १०९ | स्थानान्तानि सन्ति । |
| २८ | लोभकसाई एइंदियप्पहुडि जाव- | | लोभकषाये तान्येव सूक्ष्मसाम्प- |
| | सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा त्ति | ११० | राय स्थानाधिकानि । |
| २९ | अकसाई चउट्ठाणेसु अत्थि उवसंतकसाय- | | अकषायः— उपशान्तकषायः क्षीण- |
| | वीयराय छदुमत्था, खीणकसायवीयराय- | | कषायः सयोगकेवली अयोगकेवली चेति । |
| | छदुमत्था, सजोगकेवली अजोगकेवलीत्ति | १११ | |
| ३० | णाणाणुवादेण अत्थि० | ११२ | ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञान श्रुताज्ञान- |
| | मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी एइंदिय- | | विभंगज्ञानेषु मिथ्यादृष्टिः सासादन- |
| | प्पहुडि जाव सासणसम्माइट्ठित्ति | ११३ | सम्यग्दृष्टिश्चास्ति । |
| | विभंगणाणं सण्णिमिच्छाइट्ठीणं वा सासणसम्माइट्ठीणं वा | ११४ | |
| ३१ | सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे तिण्णि वि णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि- आभिणिबोहियणाणं मदिअण्णाणेण मिस्सियं, सुदणाणं सुदअण्णाणेण मिस्सियं, ओहिणाणं विभंगणाणेण मिस्सियं, तिण्णि वि णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि वा | ११६ | X |
| ३२ | आभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव- खीणकसाय वीदराग छदुमत्था त्ति | ११७ | आभिनिबोधक श्रुतावधिज्ञानेषु असंयत सम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति । |
| ३३ | मणपज्जवणाणी पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग छदुमत्था त्ति | ११८ | मनःपर्यय ज्ञाने प्रमत्तसंयतादयः क्षीण कषायान्ताः सन्ति । |
| ३४ | केवलणाणी तिसु ट्ठाणेसु- सजोगकेवली अजोगकेवली सिद्धा चेदि | ११९ | केवलज्ञाने सयोगायोग[illegible] । |

| | | |
|---|---|---|
| ३५ | संजमाणुवादेण ० १२० संजदा पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगि- केवलि त्ति । १२१ | संयमानुवादेन संयताः प्रमत्तादयोऽयोगकेवल्यन्ताः । |
| ३६ | सामाइय छेदोवट्ठावण सुद्धिसंजदा पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति । १२२ | सामायिकछेदोपस्थापना शुद्धिसंयताः प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिस्थानान्ताः । |
| ३७ | परिहार सुद्धिसंजदा दोसु ट्ठाणेसु- पमत्तसंजदट्ठाणे अपमत्तसंजदट्ठाणे । १२३ | परिहारविशुद्धिसंयताः प्रमत्ता- प्रमत्तायोश्च । |
| ३८ | सुहुमसांपराय सुद्धिसंजदा एक्कम्मिचेय सुहुमसंपराइय सुद्धि संजदट्ठाणे १२४ | सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसंयता एकस्मिन्नेव सूक्ष्म साम्परायस्थाने । |
| ३९ | जहाक्खाद विहार सुद्धिसंजदा चदुसु- ट्ठाणेसु उवसंत कसाय वीयराय छदुमत्था खीण कसाय वीयराय छदुमत्था सजोग- केवली अजोगि केवलि त्ति १२५ | यथाख्यात विहार शुद्धि संयताः उपशान्त कषायादयोऽयोगकेव- ल्यन्ताः । |
| ४० | संजदा संजदा एक्कम्मिचेय संजदासंज- दट्ठाणे । १२६ | संयतासंयता एकस्मिन्नेव संयता- संयतस्थाने । |
| ४१ | असंजदा एइंदियप्पहुडि जाव असं- जद सम्माइट्ठि त्ति १२७ | असंयता आद्येषु चतुर्षु गुणस्थाने- षु । |
| ४२ | दंसणाणुवादेण ० १२८ चक्खुदंसणी चउरिंदियप्पहुडि जाव खीणकसाय वीयराय छदुमत्था त्ति १२९ अचक्खुदंसणी एइंदियप्पहुडि- जाव खीण कसाय वीयराग छदुमत्था त्ति १३० | दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शना चक्षु- र्दर्शनयो मिथ्यादृष्ट्यादीनि- क्षीणकषायान्तानि संति । |
| ४३ | ओहिदंसणी असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव खीण कसाय वीदराग छदुमत्था त्ति ॥ १३१ | अवधिदर्शने असंयत सम्यग्दृष्ट्या- दीनि क्षीणकषायान्तानि । |
| ४४ | केवलदंसणी तिसु ट्ठाणेसु सजोग केवली अजोगकेवली सिद्धा चेदि । | केवलदर्शने सयोग केवली अयोग केवली च । |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४५ | लेस्साणुवादेण०<br>किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउले-<br>स्सिया एइंदियप्पहुडि जाव असंजद-<br>सम्माइट्ठि त्ति । | १३३<br>१३४ | लेश्यानुवादेन कृष्णनील कापोत-<br>लेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि असंयत-<br>सम्यग्दृष्ट्यन्तानि सन्ति । |
| ४६ | तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सण्णि-<br>मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति | १३५ | तेजः पद्मलेश्ययोः मिथ्यादृष्ट्यादीनि<br>अप्रमत्तस्थानान्तानि । |
| ४७ | सुक्कलेस्सिया सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि<br>जाव सजोगकेवलि त्ति | १३६ | शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्ट्यादीनि<br>सयोगकेवल्यन्तानि । |
| ४८ | तेण परमलेस्सिया | १३७ | अलेश्या अयोगकेवलिनः । |
| ४९ | भवियाणुवादेण०<br>भवसिद्धिया एइंदियप्पहुडि जाव<br>अजोगकेवलि त्ति | १३८<br>१३९ | भव्यानुवादेन भव्येषु चतुर्दशापि<br>सन्ति । |
| ५० | अभवसिद्धिया एक्कम्मि चेय-<br>मिच्छाइट्ठिट्ठाणे | १४० | अभव्या आद्यगुणस्थाने । |
| ५१ | सम्मत्ताणुवादेण ०<br>सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी असंजद-<br>सम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगकेवलि त्ति | १४१<br>१४२ | सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यक्त्वे-<br>असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अयोग-<br>केवल्यन्तानि सन्ति । |
| ५२ | वेदगसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि-<br>प्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति | १४३ | क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयत-<br>सम्यग्दृष्ट्यादीनि अप्रमत्तान्तानि । |
| ५३ | उवसमसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठि-<br>प्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदराग-<br>छदुमत्था त्ति | १४४ | औपशमिक सम्यक्त्वे असंयत-<br>सम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशान्तकषाया-<br>न्तानि । |
| ५४ | सम्मामिच्छाइट्ठी एक्कम्मि चेव -<br>सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे<br>सासणसम्माइट्ठी एक्कम्मि चेव सासण-<br>सम्माइट्ठिट्ठाणे<br>मिच्छाइट्ठी एइंदियप्पहुडि जाव<br>सण्णिमिच्छाइट्ठि त्ति | १४५<br>१४६<br>१४७ | सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्यग्-<br>मिथ्यादृष्टिर्मिथ्यादृष्टिश्च<br>स्वे स्वे स्थाने । |

| | |
|---|---|
| ५५ सण्णियाणुवादेण १७० | संज्ञानुवादेन संज्ञिषु द्वादश गुण- |
| सण्णी - मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव | स्थानानि क्षीणकषायान्तानि । |
| खीणकसाय वीयराय छदुमत्था त्ति १७१ | |
| ५६ असण्णी एइंदियप्पहुडि जाव | असंज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् |
| असण्णि-पंचिंदिया त्ति १७२ | |
| ५७ आहाराणुवादेण १७३ | आहारानुवादेन - आहारकेषु मिथ्या- |
| आहारा एइंदियप्पहुडि जाव सजोगकेवलि त्ति । १७४ | दृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि । |
| ५८ अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु - विग्गहगइ- | अनाहारकेषु विग्रहगत्यापन्नेषु त्रीणि |
| समावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घाद- | गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टिः सासादन- |
| गदाणं अजोगिकेवली सिद्धा चेदि १७५ | सम्यग्दृष्टिः, असंयतसम्यग्दृष्टिश्च |
| | समुद्घातगतः सयोगकेवली- |
| | अयोगकेवली च । |

उपर्युक्त उद्धरणों को देखते कुछ यह कहने को मन चाहता है कि मानों भगवान पुष्पदन्त के सिद्धान्त सूत्रों का पूज्यपाद स्वामी ने संस्कृतानुवाद कर दिया हो। किन्तु ऐसा मानने पर भी पूज्यपाद स्वामी के असाधारण पाण्डित्य में कोई बाधा नहीं आती, क्योंकि पूज्यपाद स्वामी के समय में संस्कृत भाषा का ही सर्वत्र प्रचलन था। उस समय सभी मतमतान्तरों के विद्वान अपने २ धार्मिक दार्शनिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों की रचना ~~करते थे~~ संस्कृत भाषा में ही कर रहे थे, क्योंकि उस समय ब्राह्मणों का संस्कृत भाषा पाण्डित्य सर्वत्र बिखर रहा था और इसीलिए जैनाचार्यों को भी प्रतीत हुआ कि जैन वाङ्मय सम्बन्धी साहित्य की रचना भी संस्कृत भाषा में ही की जाय जिससे हमारा साहित्य जैनेतर साहित्य के मुकाबले में किसी प्रकार हीन न समझा जाय। इससे पहिले सारा जैन साहित्य प्राकृत भाषामय था। पर संस्कृताभिमानी ब्राह्मणों ने अपने नाटकादि ग्रन्थों में संस्कृत के मुकाबिले में प्राकृत भाषा को नीचा स्थान दिया अर्थात् नीच पात्रों की भाषा प्राकृत रक्खी और सर्वसाधारण की दृष्टि में प्राकृत हल्की भाषा समझी जाने लगी तब जैनाचार्यों को भी संस्कृत भाषा अपनाना पड़ी।

~~कोई~~ पाठकगण — यहां यह शंका उपस्थित कर सकते हैं कि यह कैसे मान लिया जाय — कि पूज्यपाद के सामने सिद्धान्तसूत्र रहे हैं और उन्होंने उनका संस्कृतानुवाद सर्वार्थसिद्धि में दिया है। परन्तु इसका उत्तर हमें इसी लेख के नम्बर ३१ से मिल जाता है जिसमें कि मिश्र गुणस्थान के मिश्र ज्ञानों का वर्णन सिद्धान्तसूत्र में तो किया गया है, पर सर्वार्थसिद्धि में उक्त बात बिलकुल ही नहीं दी गई है। कोई यहां पर कह सकते हैं कि संभव है, पाठ छूट गया हो। पर यथार्थ में पाठ नहीं छूटा है, किन्तु जान बूझ कर यह विषय छोड़ा गया सा प्रतीत होता है। कारण कि — पूज्यपाद स्वामी के तर्कणाशील हृदय में यह तर्क उठा — कि सम्यक्पना या मिथ्यापना तो 'दृष्टि' के साथ ~~सम्बन्ध~~ रखने वाली वस्तुएँ हैं, यहां ज्ञान में उसका क्या सम्बन्ध? फिर उनके हृदय में यह प्रश्न खड़ा ही रहा कि मिश्र गुणस्थानवर्ती ज्ञानों को 'ज्ञान' कहा जाय, या — अज्ञान? यदि ज्ञान मानें तो उनकी गिनती सम्यग्ज्ञान रूप मतिश्रुत ज्ञान की उपासना से व्यो के साथ होना चाहिए। और — यदि 'अज्ञान' मानें, तो उनकी गिनती कुमति कुश्रुत ज्ञान के गुणस्थानों के साथ की जाना चाहिए? दुविधा हो, पर उन्होंने तो उसे एकदम ही छोड़ दिया है — जो कि एक विचारणीय बात है? परन्तु — धवल सिद्धान्त के सूत्र-सूत्रकार तो ~~बहु~~ बहुत ही स्पष्ट सूत्र द्वारा (सूत्र नं० ११८) उक्त बात को प्रकट करते हैं कि इस मिश्र गुणस्थान में, जब मिश्र भाव है, मिश्र ~~स~~ सम्यक्त्व है, तो फिर इन दोनों के ही अनुरूप मिश्र ज्ञान भी ~~क्यों न~~ मान लिया जाय?, इसलिए उन्होंने उसे तदनुसार ही सूत्रों में निबद्ध किया है।

श्रुत सागर सूरि ने भी
~~हमारी इस उक्त बात की पुष्टि श्रुतसागरी टीका से भी होती है, क्योंकि उन्होंने~~ - इसी स्थान पर जिस प्रकार की शंका उठाकर उसका समाधान करना चाहा है पर वे भी उसका उचित समाधान नहीं खोज सके हैं, क्योंकि [illegible] ~~इसी धवल सिद्धान्त~~ ~~के सूत्र [illegible] उद्धृत भी किया है~~ सिद्धान्त [illegible] नहीं होने [illegible] वह इस प्रकार है —

"सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्ज्ञानमज्ञानं च केवलं न संभवति तस्माज्ज्ञानत्रयाधारत्वात् । उक्तं च — मिस्से णाणत्तयं मिस्सं अण्णाणत्तएण त्ति । तेन ज्ञानानुवादे मिश्रत्रयाभिधानं,

तस्माद्यात प्रकृत्यायाः भेदाभिधानं ज्ञातव्यम्। ज्ञानत्वम (?) यथाव-स्थितार्थविवक्षत्वाभावात्।"

यह बात तो बिल्कुल स्पष्ट ही है कि श्रुतसागरीय टीका बिल्कुल ही सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः अनुकरण करती हुई लिखी गई है जिसका अर्थ यह होता है कि श्रुतसागर सूरि के हृदय में भी यह शंका उठी कि पूज्यपाद स्वामी ने इस मिश्र गुणस्थान में ज्ञान या अज्ञान का निरूपण क्यों नहीं किया? उसका समाधान उन्होंने उक्त रूप में करना चाहा है। पर यह एक आश्चर्य की ही बात है कि स्वयं ही सिद्धान्त सूत्र का स्पष्टतः उद्धरण देते हुए भी मिश्र गुणस्थान में 'मिश्र ज्ञान' कहने का साहस नहीं किया। क्योंकि उनके ध्यान में संभवतः यह बात सामने ही है मालूम पड़ती है कि यदि हम इस गुणस्थान में 'मिश्र ज्ञान' मानेंगे, तो लोग इसे पूज्यपाद की त्रुटि समझेंगे — या — फिर हमारे ही कथन को अप्रमाण समझेंगे। इसलिए उन्होंने उक्त बात की ओर संकेत भी किया, सिद्धान्त सूत्र का उद्धरण भी दिया और एक हलका सा समाधान भी कर दिया। जो कुछ भी हो, पर इतना तो इस बात से पता चलता ही है कि पूज्यपाद स्वामी के सामने सर्वार्थसिद्धि रचते समय षट्खण्ड सिद्धान्त के मूल सूत्र अवश्य थे। इस बात का और भी उज्ज्वल समर्थन आगे की संख्या प्ररूपणा-क्षेत्रप्ररूपणा आदि के देखने से बखूबी हो जाता है। जिसका यह अर्थ होता है कि आज से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व — इस सिद्धान्त ग्रन्थ का पठन-पाठन बहुत जोरों से होता रहा है और होना ही चाहिए था क्योंकि यही आगम निधि तो हमारे महर्षियों ने विरासत में सौंपी है।

— o —

मूल लेख ता० ६/८/३७ की रात को ९ बजे से ६ बजे तक लिखा गया। यह उसकी कापी है जो कि दो दिन में लिखी जा सकी है।

प्रातःकाल ५ बजे तक

ही.ला.
९/८/३७

श्री

# भगवान पुष्पदन्त और पूज्यपादस्वामी

=============-0-==============

वर्तमान में उपलब्ध होने वाले श्रुत ज्ञान के सर्व प्रथम लिपिवद्ध कर्ता या उद्धारक भगवान पुष्पदन्त और भगवानभूतिवलि भटट्टारक हुए हैं । इनका समय भगवान महावीर के निर्वाण के लगभग 600 वर्ष वाद का है । भगवान पुष्पदन्त ने सर्वप्रथम जिस रचना को लिपिबद्ध किया वह सूत्रात्मक जीवट्ठाण है। इसी के ऊपर आचार्य वीरसेन ने 60 हजार श्लोक प्रमाणं धवला नाम की टीका बनायी जो कि आज "धवल सिद्धान्त नाम से प्रसिद्ध है । लोक प्रसिद्धिवस मैं इस लेख में जीवटठाण सिद्धान्त को धवल सिद्धान्त नाम से ही उल्लेख करूंगा ।

भगवान उमास्वाति के तत्वार्थसूत्र पर सर्व प्रथम टीकाकार पूज्यपाद स्वामी माने जाते हैं । हालांकि--इसके पूर्व में स्वामी समन्तभद्र, तत्वार्थसूत्र पर गन्धहस्तिमहाभाष्य के रचयिता प्रसिद्ध हैं । किन्तु आज के उपलब्ध जैन वाड्मय में उसके अवतरण या उल्लेख न पाये जाने से ऐतिहासिकों को सन्देह है । कुछभी हो, इस समय उसके वावत मुझे कुछ नहीं कहना है । इसका निर्णय तो भविष्य में उपलब्धहोने वाला जैन साहित्य ही करेगा । किन्तु यह तो निश्चित ही है कि तत्वार्थ सूत्र पर जितनी भी दिगम्बर या श्वेताम्बर टीकाये उपलब्ध हैं उन सब में सर्वार्थ सिद्धि ही सर्वप्राचीन, मौलिक एवं प्रामाणिक मानी जाती है । पूज्य पाद का समय विक्रम की पांचवी -छटवी शताब्दि माना जाता है और इस प्रकार से भगवान पुष्पदन्त के लगभग पांचसौ वर्ष बाद उनका समय ठहरता है ।

सर्वार्थ सिद्धि की-प्रथम अध्याय के आठवेंसूत्र (सत्संख्याक्षेत्र) कीटीका अपना खास महत्त्व रखती है । उसमें पायी जाने वाली विशेषता न राजवार्तिक में दृष्टिगोचर होती है न श्लोकवार्तिक या तत्वार्थसूत्र की अन्य दिगम्बर श्वेताम्बर टीकाओं में ही । इस सूत्र की टीका का गम्भीर एवं गवेषणात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि पूॅज्यपाद स्वामी के समय तक भगवान पुष्पदन्त के जीवटठाण सिद्धान्त का पठन पाठन बहुलता के साथ सर्वत्र प्रचलित था, क्योंकि इस (सत्संख्यादि०) सूत्रकी समग्रटीका में धवलसिद्धान्त के मूलसूत्रों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दृष्टि गोचर होता है । मै यहाँ पर तुलनात्मक दृष्टि से केवल सत्प्ररूपणा के कुछ उद्धरण देकर उक्त बात को पुष्ट करूंगा ।

| धवल सिद्धान्तसत्प्ररूपणासूत्रनं0 | | सर्वार्थसिद्धि प्रथमअध्यायसूत्र 8वें की टीका |
|---|---|---|
| 1- अत्थि मिच्छाइट्ठी | 7 | मिथ्यादृष्टिः |
| 2- सासणसम्माइट्ठी | 8 | सासादनसम्यग्दृष्टिः |
| 3-सम्मामिच्छाइट्ठी | 9 | सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः |
| 4-असंजदसम्माइट्ठी | 10 | असंयतसम्यग्दृष्टिः |
| 5सं संजदा संजदा | 11 | संयता संयतः |
| 6- पमत्तसंजदा | 12 | प्रमत्तसंयतः |
| 7- अप्पमत्तसंजदा | 13 | अप्रमत्तसंयतः |
| 8- अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसुअत्थि उवसमा खवा | 14 | अपूर्वकरण स्थाने उपशमकःक्षपकः |
| 9-अणियट्टिवादर सांपराइयपविट्ठ सुद्धिसंजदेसुअत्थिउवसमाखवा | 15 | अनिवृत्तिवादर साम्परायस्थाने उपशमकःक्षपकः |
| 10- सुहमसांपराइयपविट्ठसुद्धिसंजदेसु अत्थि उवसमा खवा | 16 | सूक्ष्म साम्परायस्थाने उपशमकः क्षपकः |
| 11-उवसंतकसायवीयराय छदुमत्था | 17 | उपशान्तकषाय वीतरागछद्मस्थः |
| 12-खीणकसायवीयराय छदुमत्था | 18 | क्षीणकसाय वीतराग छद्मस्थः |
| 13- सजोग केवली | 19 | संयोगकेवली |
| 14- अजोग केवली | 20 | अयोगकेवली चेति । |

धवल सिद्धान्तमें 21 वें नम्बर का सूत्र सिद्दाचेदि" है जिसका कि जीवट्ठाण(जीवस्थान)के लिहाज से होना आवश्यक है । किन्तु पूज्यपादस्वामी ने गुणस्थानकी दृष्टि से उसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी और अयोगकेवली के नाम के आगे ही "इति" शब्द देकर के उसबात की समाप्ति करदी है ।

| | | |
|---|---|---|
| 15- संतपरूवणाए दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य | 6 | सत्प्ररूपणाद्विविधा सामान्येन विशेषेण च |
| 16- आदेसेणगदियाणुवादेण0 | 22 | विशेषेणगत्यनुवादेन नरकगतौसर्वासुपृथिवीषु आद्यानिचत्वारि गुणस्थानानानिसन्ति |
| णेरइया च उददाणेसुअत्थि-मिच्छाइट्ठीसासणसम्माइट्ठीसम्मामिच्छाइट्ठी असंजद सम्माइट्ठित्ति | 23 | |

| | | |
|---|---|---|
| 17- तिरिक्खापंचसुट्ठाणेसुअत्थि मिच्छाइट्ठीसासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्मा0 संजदासंजदात्ति | 24 | तिर्यग्गतौताम्येवसंयतासंयत-स्थानाधिकानिसन्ति |
| 18-मणुस्साचौद्दसगुणट्ठाणेसुअत्थि मिच्छा0 अजोगकेवलित्ति | 25 | मनुष्गतौचतुर्दशायिसन्ति |
| 19- देवाचदुसुट्ठाणेसुअत्थिमिच्छा0 सासण0सम्मामि0असं0सम्मा0 | 26 | देवगतौ नारकवत् |
| 20-एइंदियावीइंदियातीइंदिया चउरिंदिष एक्कम्मिचेयमिच्छाइ ट्ठिट्ठाणे | 34 | इनिद्रयानुवादेन-एकेन्द्रियादिषुचतुरिन्दयपर्यन्तेषु एकमेवमिथ्यादृष्टिस्थानम |
| 21 पंचिंदिया0 अजोगकेवलित्ति | 35 | पचेन्द्रियेषु चतुर्दशायि सन्ति |
| 22- कायाणुवादेण 0 | 40 | कायानुवादेनपृथिवीकायिकादिषु वनस्पति |
| पुढविकाइया आउका0तेउका0 वाउका0वणफाइका0एक्कमिचेयमिच छाइट्ठि ट्ठाणे | 41 | कायन्तेषुएकमेवमिथ्यादृष्टिस्थानम । |
| 23- तसकाइयावीइंदियप्पहुदिजाव अजोगकेवलित्ति | 42 | त्रसकायेषु चतुर्दशायिसन्ति |
| जोयाणवादेण0 | 45 | |
| 24- मणजोगोवचिजोगोकायजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठप्पहुडिजावसंजोग केवलित्ति | 62 | योगानुवादेनत्रिषुयोगेसुत्रयोदशगुणस्थानानिभवन्ति |
| 25- वेदाणुवादेण0 | 98 | |
| इत्थिवेदापुरसवेदाअरूण्णिमिच्छा इट्ठिप्पहुडिजावअणियाट्ठित्ति | 99 | वेदानुवादेनत्रिषुवेदेषुमिथ्यादृष्टयाद्यानिवृत्ति वादरान्तानि सन्ति । |
| णवुंसयवेद एइंदियप्पहुडिजाव अणियट्ठित्ति | 100 | |
| 26-तेणपरमवगदवेदाचेदि | 101 | अपगतवेदेषु अनिवृत्तिवादराद्ययोगकेवल्यन्तानि । |